यह समयसार, ३२० गाथा, जयसेनाचार्यजी की टीका, दूसरे पृष्ठ पर, दूसरे पृष्ठ पर है। **उन तीनों में,...** कल चल गया है, फिर लेते हैं।

क्या चलते हैं? कि किस भाव से मुक्ति होती है? भाव पाँच हैं-एक द्रव्यरूप भाव... भाव अर्थात् अस्तित्व-वस्तु। त्रिकाल वस्तु जो भाव और एक पर्याय-अवस्थारूप भाव। जो त्रिकाल वस्तु है, वह तो पारिणामिकभाव, ध्रुवभाव-वह तो मोक्ष के मार्ग और मोक्ष की पर्याय से रहित है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ब्रह्म, पूर्ण ब्रह्मस्वरूप, वह तो ध्रुव चीज़ ज्ञायकभाव, वह तो परमस्वभाव, सहजभाव आत्मा की मूल अस्ति / मौजूदगी का वह भाव। उस ५६ गाथा में से कहा था 'द्रव्य-आत्मलाभ हेतु' - द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके स्वरूप की अस्ति; लाभ अर्थात् अस्ति, मौजूदगी। त्रिकाल ज्ञायकभाव, वह वस्तु की स्थिति-वह वस्तु की अस्ति / मौजूदगी। वह चीज़ ध्येयरूप है, ध्येयरूप होती है परन्तु मोक्षमार्ग और मोक्षरूप नहीं होती। समझ में आया?

(वह) चीज़ ध्येयरूप होती है, ध्यान में ध्येय / लक्ष्य करनेयोग्य वह चीज़ है। जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है, वह समझ में आया? वह नियमसार, गाथा ३८ कल थोड़ी चली थी।

जो जीवादि सात तत्त्व हैं-यह किसी ने प्रश्न किया था। जीवादि सात तत्त्वों में तो जीव आ गया तो उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। यहाँ तो उस जीव की एक समय की पर्याय को लिया गया है। समझ में आया? सूक्ष्म भाव है। एक आत्मा एक समय में जो ध्रुव परम स्वभावभाव, वह तो मूल शक्ति-मूल सत्त्व और मूल द्रव्य है तथा उसकी एक समय की पर्याय-अवस्था, चाहे तो संवररूप हो, निर्जरारूप हो, मोक्षरूप हो। एक जीव की पर्याय जो लक्ष्य में आवे कि 'यह जीव' तो वह तो सब बहिरद्रव्य है, बहिरतत्त्व है।

मुमुक्षु : वह तो इन्द्रिय हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाह्य तत्त्व है। निश्चय से तो परद्रव्य हो गया। स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य हो गया। एक बार एक न्याय से तो कहा था कि यह पर्याय है, वह स्वद्रव्य की अपेक्षा से अवस्तु है। समझ में आया?

अवस्तु कहा, वह बहिरतत्त्व है, तो अपना त्रिकाल ज्ञायकभाव ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से तो वह अवस्तु है, अद्रव्य है, बहिरद्रव्य है। उसकी अपेक्षा से द्रव्य और अपनी अपेक्षा से अद्रव्य है। जरा सूक्ष्म कहा था थोड़ा कि उसका विषय करनेवाली वस्तु ज्ञान जो है, उसे विषय करता है। वह मूल चीज़ नहीं है। समझ में आया? वास्तव में तो उसका विषय करता है, वह बहिरतत्त्व का, वह मिथ्यात्वभाव उसका विषय करता है।

मुमुक्षु : बहुत सरस! मिथ्यात्वभाव विषय करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? सूक्ष्म भाव है, भाई! अनन्त काल से इसे चीज़ क्या है? उसे दृष्टि में लेने की चीज़ का भाव क्या है? (इसका) पता नहीं है, ऐसे का ऐसा धर्म हो जाये - ऐसा मानता है। कहते हैं कि एक समय का भगवान आत्मा... देखो! जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। जो यहाँ पर्याय को चारभाव कहा, उसको यहाँ बहिरतत्त्व कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? वह वास्तव में उपादेय नहीं है। समझ में आया? पुण्य-पाप का विकल्प या जीव की एक समय की क्षयोपशम अवस्थारूप दशा या संवर और निर्जरारूप पर्याय, वह आदरणीय नहीं है। पण्डितजी! वह उपादेय नहीं है, क्योंकि अवस्तु है। वस्तु हो, वह उपादेय होती है। त्रिकाल वस्तु महाप्रभु चैतन्यबिम्ब जो वज्रबिम्ब है, ध्रुव अविनाशी, आदि और अन्तरहित जो चीज़ है, वही वस्तु है और वही परमस्वभाव और वही आत्मस्वरूप की अस्ति (है)। यहाँ पर्याय की अस्ति को अस्ति में गिनना नहीं है।

मुमुक्षु : ...नहीं है, बड़ी उलझन में पड़ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है? बड़ी उलझन नहीं, अन्दर बड़ी दृष्टि के माहात्म्य में चला जायेगा। वस्तु का पता नहीं कि क्या है और कहाँ दृष्टि देना है? समझ में आया?

सम्यग्दर्शन जो धर्म की पर्याय है, वह भी वहाँ अन्तःतत्त्व की अपेक्षा से बहिरतत्त्व कहने में आया है। आहाहा! क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती है तो उसे परद्रव्य

कहा, परभाव कहा, हेय कहा। परवस्तु शरीर, मन, वाणी, ज्ञेयरूप हेय है, वह तो कहीं रह गये, परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत शुभराग का विकल्प उठता है, व्यवहाररत्नत्रय का (विकल्प उठता है), वह भी हेय है, राग है; वह तो ठीक, परन्तु एक समय की पर्याय में नौ प्रकार पर्याय के खड़े होते हैं, वे बहिरतत्त्व हैं। वे सम्यग्दृष्टि को तो हेय है। समझ में आया? वह वास्तव में उपादेय नहीं है। **वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है...** यह तो स्वयं का डाला है।

आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। समझ में आया? दो दिन पहले कहा था कि **कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वास्तव में... पाठ में क्या है? समझ में आया? 'हि' शब्द है न? **स्वद्रव्यनिशितमतेरुपादेयोह्यात्मा।** (उसमें) 'खरेखर' गुजराती में खरेखर कहा है, हिन्दी में वास्तव में कहा है। किसको? जो त्रिकाल ज्ञायकभाव- जो एक समय की पर्यायरहित, वही वास्तव में आत्मा है। वास्तव में लिया है न यहाँ? वास्तव में, उसमें (गुजराती में) खरेखर, पाठ में (संस्कृत में) 'हि' लिया है। 'हि' भगवान आत्मा, जहाँ नजर करनी है... नजर, वह पर्याय है। समझ में आया? परन्तु जिसमें नजर करनी है, वह चीज़ वास्तव में ध्रुव है, वही आत्मा है; पर्याय, वह वास्तव में आत्मा नहीं है। आहाहा! मूलचन्दभाई! इस बार क्लास में जरा सूक्ष्म चलता है। हमारे सेठ कहते थे इस बार क्लास में (शिक्षण शिविर में) सूक्ष्म आया। थोड़ा सुनें तो सही, ऐसा मार्ग।

मूल चीज़ का पता नहीं होता और धर्म हो जाये (-ऐसा कभी नहीं होता)। यहाँ कहते हैं कि वास्तव में-खरेखर तो, अनन्त-अमूर्त - अनादि-अनन्त भगवान आत्मा अतीन्द्रिय स्वभाव शुद्ध सहज परम, सहज... सहज.. सहज... सहज... स्वाभाविक परम पारिणामिक भाव अर्थात् जिसमें पर्याय की अपेक्षा नहीं, पर्याय से निरपेक्ष ऐसा अपना निजद्रव्य / वस्तु, वह जिसका स्वभाव है, वह कारणपरमात्मा वास्तव में आत्मा है। यहाँ तो कारणपरमात्मा... मोक्षमार्ग का अधिकार है न, पर्याय का अधिकार है तो उसमें कारणपरमात्मा कहा; यहाँ दृष्टि के विषय में तो वह कारण भी नहीं। समझ में आया?

ध्येय अवश्य, परन्तु ध्येय और कारण दोनों में अन्तर है। सेठ! समझना पड़ेगा। उलझन में नहीं पड़ेगा, उलझन उड़ जायेगी - ऐसी बात है। एक समय में भगवान नित्य

ध्रुव, राग और व्यवहार विकल्प से तो रहित, परन्तु विकल्प का जो ज्ञान अपने से होता है; विकल्प की अस्ति है तो नहीं, अपने से जो ज्ञान पर्याय में होता है, वह एक समय की पर्याय भी द्रव्य में नहीं और उस पर्यायरहित आत्मा है, उसे वास्तव में भगवान सर्वज्ञदेव वस्तुरूप से आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है। आसन्न भव्य (अर्थात्) जिसकी मुक्ति निकट है। आहाहा! समझ में आया? आसन्न भव्य, निकट है जिसको संसार का किनारा और मोक्ष की पर्याय अल्पकाल में प्राप्त होनेवाली है। समझ में आया? यह अपने चलता है न? भव्यत्व पारिणामिक-भव्यत्व में जो मुक्ति होने की योग्यता की शक्ति पड़ी है और मुक्तिरूप जो भव्यत्वभाव - द्रव्यस्वभाव अन्दर है, वह पर्याय में प्रगट होने के योग्य जो भव्यत्व है, वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है, कहते हैं। समझ में आया?

एक समय की पर्याय / अवस्था, क्षयोपशमज्ञान की अवस्था हो... क्षयोपशम अर्थात् विकासरूप अवस्था, ज्ञान के प्रगट विकासरूप अवस्था का अंश भी बहिर्तत्त्व गिनकर यहाँ तो हेय कहा है। समझ में आया? अन्तःतत्त्व जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, वही ध्येय करने योग्य और वही आदरणीय और उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को दूसरी कोई चीज़ उपादेय नहीं है। व्यवहार भी उपादेय नहीं, ऐसी पर्याय उपादेय नहीं, निर्मल पर्याय, हों! आहाहा! लालचन्दजी! ऐसी सूक्ष्म बात है। जरा सुने तो सही! यह क्या चीज़ वीतरागमार्ग में है। मार्ग का पता नहीं और अपनी कल्पना से मार्ग मान ले, बापू! ऐसा तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? जहाँ भगवान-परमात्मा बिराजता है-निज प्रभु (बिराजता है), उसमें तो एक समय की पर्याय का भी अस्तित्व नहीं है—ऐसा द्रव्य ही उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को वही द्रव्य आदरणीय है। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन हुआ और उसमें चारित्र की पर्याय भी हुई तो भी वह उपादेय और आदरणीय नहीं है।

मोक्ष की पर्याय तो प्रगट है नहीं परन्तु हुई उसको, वह भी उस जीव को-सम्यग्दृष्टि को उपादेय नहीं है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसा भगवान आत्मा एक ही चीज़ त्रिकाली चीज़-ध्रुव अन्तःतत्त्व, अन्तः स्वरूप, अन्तःभाव और पर्याय के अंश से लेकर रागादि

सब बहिर्तत्त्व है। समझ में आया? ऐसे अन्तःतत्त्व पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। दूसरी लाख बात करे, करोड़ बात करे... समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन की अवस्था-धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला नूर-तेज पर्याय का (तेज), आहाहा! समझ में आया? वह द्रव्य को ध्येय करने से प्रगट होगा। बाकी तीन काल में दूसरी कोई बात चाहे जो करे, उससे वह प्रगट नहीं होता। समझ में आया? यह बात (नियमसार गाथा) ३८ में वहाँ कही, वह बात यहाँ कहते हैं, देखो!

उन तीनों में,... पहला पैराग्राफ है न? तीन-कौन? जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व, ये तीन चीज़। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व, ये तीन। उनमें जो जीवत्व तीन में सामान्य जो त्रिकाल जीवत्वस्वभाव है, वह परमपारिणामिकस्वभावरूप जीवत्वभाव, वही वास्तव में आत्मा है; वह तो बन्ध और मोक्ष के कारण तथा बन्ध और मोक्षरूप परिणाम से शून्य है। पहले परिणाम से शून्य कहा था, यहाँ अभाव है - ऐसा कहा। समझ में आया? वह आया था, नहीं पहले? पहले ऊपर शून्य कहा था और बन्ध-मोक्ष परिणाम से रहित कहा। तीसरे पैरेग्राफ के अन्त में पहले में शून्य कहा था-परिणाम से शून्य, बन्ध-मोक्षपर्याय परिणति से रहित है, ऊपर पैराग्राफ में है। समझ में आया?

कहते हैं कि जो जीवत्वभाव त्रिकाल.. भव्य-अभव्य में जीवत्व जो त्रिकालभाव है, वही वास्तविक आत्मा और वही उपादेय और आदरणीय है। अब जो दस प्राणरूप जीवत्व है, वह दस प्राण जड़ नहीं। वह पाँच इन्द्रियाँ-वीर्य—ऐसी जो पर्याय की योग्यता, उसको यहाँ परिणाम कहा है। है तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा, परन्तु वह अपेक्षा यहाँ नहीं लेना। आत्मा स्वतन्त्र अपनी पर्याय में भावेन्द्रियरूप और वीर्यरूप जो परिणमन करता है, उसको अशुद्ध पारिणामिकभाव कहने में आता है। समझ में आया? यह अशुद्ध पारिणामिकभाव बहिर्तत्त्व है; अतः यह आदरणीय नहीं है और भव्य तथा अभव्य दो भेद हैं, वे भी अशुद्ध पारिणामिकभाव हुआ। भेद हुआ न? एकरूप नहीं रही वह चीज़, तो भव्य और अभव्य जो अशुद्ध पर्यायरूप पारिणामिक कहने में आता है, वह भी आदरणीय नहीं है।

अब तीन भाव में से किस भाववाले को मुक्ति होती है और किस भाव से मुक्ति होती है? समझ में आया? **तीनों में भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को...** भव्यत्व अन्दर

योग्यता, अन्दर मुक्तिस्वरूप ही भगवान है। वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही है। वस्तु में बन्ध-मोक्ष है नहीं। समझ में आया? मुक्त अर्थात् यह मुक्ति अर्थात् मुक्ति की पर्याय-ऐसा नहीं। द्रव्य मुक्तस्वरूप अर्थात् भिन्न ही है, ऐसा। समझ में आया? ऐसा **भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को तो यथासम्भव सम्यक्त्वादि जीवगुणों का घातक...** सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, ऐसी जो जीव की निर्मल वीतरागी पर्याय, उसरूप जीव नहीं परिणमता और विकाररूप परिणमता है, उसमें 'जीवगुण' - शब्द भले गुण लिया, परन्तु है पर्याय, अवस्था। मिथ्यात्व अवस्था, सम्यक्त्व को घात करती है, उत्पन्न नहीं होने देती; अ-ज्ञान, सम्यग्ज्ञान को घात करता है और अ-चारित्र, चारित्र की पर्याय को घात करता है। यह है तो ऐसा, परन्तु यहाँ लेते हैं कि उसमें निमित्तरूप घाति और अघाति कौन है, वह बताते हैं। समझ में आया?

जीव पर्याय का घातक **'देशघाती' और 'सर्वघाती'...** सम्यक्त्वमोहनीय आदि देशघाती है। मिथ्यात्व सर्वघाती अर्थात् पूर्णरूप प्रगट होने न दे, उस प्रकृति के निमित्त को सर्वघाती कहते हैं। कुछ विकास और कुछ घात हो, उसे देशघाती कहा जाता है। इसमें कितना याद रखना लोगों को! ऐई, मनसुखभाई! वकालात में कितना याद रखते हैं? कायदा और फायदा धूल और धाणी। आहाहा!

कहते हैं, भव्यत्व पारिणामिक अपना निज शाश्वत् स्वभाव, उसकी पर्याय में-अवस्था में-हालत में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से विरुद्ध पर्याय करते हैं, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की घातक है। विरुद्ध परिणाम करते हैं, वह परिणाम सम्यग्दर्शन आदि का घातक है परन्तु यहाँ वह घातक न लेकर देशघाती-सर्वघाति प्रकृति घातक लिया है। क्योंकि उसका लक्ष्य प्रकृति पर है, समझ में आया? स्वभाव पर लक्ष्य नहीं है। समझ में आया? अपना अस्तित्व त्रिकाली ज्ञायकभाव अस्तित्व की-मौजूदगी की दृष्टि नहीं तो उसकी एक समय की पर्याय और राग की अस्ति पर दृष्टि है तो उस कर्म पर उसकी दृष्टि गयी वहाँ लम्बाकर.... समझ में आया? ....तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय, उसको घात करने में देशघाती और सर्वघाति जो प्रकृति-जो जड़ है, उसे वहाँ निमित्त से देशघाती और सर्वघाती कहने में आया है।

ऐसे नामोंवाला मोहादिकर्मसामान्य... मोहादिकर्मसामान्य - भेद न पाड़कर मोहकर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय अन्तराय इत्यादि—ऐसा जो सामान्य कर्म है, उसके अन्तर्भेद में मिथ्यात्व-दर्शनमोह, वह सर्वघाती है; सम्यक्त्वमोहनीय, वह देशघाती है; केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती है; चार ज्ञानावरणीय देशघाती है - ऐसे अन्तर्भेद ले लेना। परन्तु अन्तर्भेद न करके मोहादि कर्म सामान्य **पर्यायार्थिकनय से ढँकता है,...** देखो! अपनी निर्मल पर्याय पर्याय (के घात) में वह निमित्त होता है। द्रव्यार्थिकनय से तो कोई विघ्न है नहीं। समझ में आया?

चाहे तो मिथ्यात्व का तीव्र अशुभ परिणाम हो तो भी वस्तु में तो जो है, वह है; उसमें तो कोई नुकसान है नहीं और चाहे तो केवलज्ञान प्रगट हो तो भी वस्तु को कोई लाभ होता है—ऐसी कोई चीज़ है नहीं। समझ में आया? ऐसी जो चीज़ है, उसका पर्याय में निमित्तरूप-पर्याय में निमित्तरूप ऐसा मोहकर्म—दर्शनमोह, चारित्रमोह; ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय—ऐसा कर्म एक निमित्त। मलिन परिणामरूप जीव, अपने को छोड़कर जो परिणमन करता है, उस परिणमन का वास्तव में तो शुद्ध परिणमन का वही घातक है परन्तु वह वास्तव में निमित्तकर्म का लक्ष्य किया था तो निमित्तकर्म घातक है - ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म भाई! यह तो जिसे अभी कुछ अभ्यास ही न हो, उसे क्या पता पड़े? परन्तु बापू! यह अभ्यास करना पड़ेगा, यदि सुखी होना हो। यह जन्म-मरण के चारगति के दुःख अकेले दुःख नहीं, नारकी के या ऐसे नहीं दुःख, चारगति के दुःख-आकुलता, स्वर्ग में भी दुःख / आकुलता है। उस आकुलता की पर्याय का व्यय करना हो और अनाकुल आनन्द सुखरूप होना हो तो उसे द्रव्य त्रिकाली है, उसकी दृष्टि करना पड़ेगी। इसके बिना सुख का पंथ नहीं निकलेगा, समझ में आया? कहते हैं। **ऐसा जानना।**

अब उसकी सुलटी बात करते हैं। सवली क्या कहते हैं? सुलटी, सुलटी कहते हैं न, तुम्हारी हिन्दी में क्या कहते हैं? सुलटी (श्रोता : सीधी) सीधी तो नहीं, सुलटी। **वहाँ जब कालादि लब्धि के वश,...** काल आदि शब्द पड़ा है। अकेला काल नहीं। आहाहा! स्व काल में आनन्द की पर्याय प्रगट होने का काल है और पर्याय में त्रिकालस्वभाव सन्मुख होने का जो भाव है, वह भाव और काल साथ में पाँचों समवाय हैं। समझ में आया? पाँचों ही समवाय का अर्थ—भगवान आत्मा में जिस समय जो लब्धि प्राप्त

होनेवाली है, वह काल और भव्यत्व अर्थात् भाव, वह भी उस समय में भाव प्रगट होना था, वह भाव और उसी समय में स्वभावसन्मुख भाव किया, वह भाव और उसी समय में कर्म के निमित्त में, कर्म के कारण से अभाव हुआ, वह चौथा बोल और पाँचवाँ बोल। समझ में आया ? पाँचवाँ बोल क्या रहा ?

मुमुक्षु : स्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव त्रिकाल। त्रिकाल स्वभाव भगवान आत्मा, वह तो है ही, उस पर भाव लगाया, तब पाँचों समवाय उसमें आ गये। आहाहा! समझ में आया ? गजब बात भाई!

दूसरा ढेर याद करते हैं और अमुक याद करते हैं, उसकी अपेक्षा यह चीज़ सीखे तो उसमें पता लगे कि क्या चीज़ है! समझ में आया ? केवली को एक ज्ञान है और छद्मस्थ को चार ज्ञान है और अमुक को इतना है, और अमुक को इतना है, पहाड़े बोलता रहता है, उसमें क्या है ? सुन तो सही! समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपनी **कालादि लब्धि के वश, भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है...** भव्यत्वशक्ति तो उसे कहना है, जो मोक्षस्वभाव त्रिकाल, उसे भव्यत्वशक्ति। उसकी व्यक्तता-प्रगटता होती है। होती है तो उसका अर्थ क्या ? कैसे होती है, वह बाद में कहेंगे। यहाँ तो होती है - ऐसा पहले लिया। तब-जब होती है, तब, जब कालादि भावादि की लब्धि अन्दर स्वभावसन्मुख होने का भाव का काल है। भगवान, भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्दस्वरूप ध्रुव है, उस ओर के भाव का झुकाव हुआ तो कालादि लब्धि वश पर्याय हो गयी तो वह पर्याय क्या है ? व्यक्त होती है, प्रगट होती है। जो यहाँ शक्ति में से व्यक्ति- ऐसा तो कहा, आहाहा! तथापि ध्रुव में से पर्याय आयी ? पर्याय, पर्याय से होती है—ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : शक्ति का मतलब पर्याय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति त्रिकाल ध्रुव है; पर्याय नहीं। व्यक्ति, वह पर्याय है। शक्ति वह त्रिकाल; व्यक्ति / प्रगट वह पर्याय, परन्तु उस शक्ति में से प्रगट पर्याय होती है... यह यहाँ ध्रुव-ध्रुव भले बने शक्ति, परन्तु पर्याय का कारण वह ध्रुव नहीं। वाह! गजब बात है!

यह तो अमृत चौघड़िया की बातें हैं। अमृत प्रगट करने की (बातें हैं)। हैं? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... पर्याय पर बुद्धि है, अवस्था-अवस्था है न क्षणिक? ज्ञान का विकास, उस पर रुचि है, बुद्धि है, राग पर रुचि है, निमित्त पर रुचि है, इन तीन भाव में जो रुचि है, वह दृष्टि गुलाँट खाती है, वह रुचि छोड़कर ध्रुव पर दृष्टि करता है, तब कहते हैं कि शक्ति की व्यक्ति होती है।

वहाँ तो ऐसा लिया है 'शक्ति में से प्रगटता।' भाई! वस्तु को समझावे तो कैसे समझावे? एक ओर कहते हैं पारिणामिकभाव बन्ध-मोक्ष की पर्यायरहित ध्रुव ही है। समझ में आया? क्योंकि वह परिणमन नहीं करता न? परिणमन तो पर्याय करती है, परिणमन पर्याय करती है; वह - द्रव्य तो अपरिणामी त्रिकाल ध्रुव है। समझ में आया?

कहते हैं... समझ में आये ऐसी चीज़ है, हों! न समझ में आये ऐसी कोई चीज़ है ही नहीं। आचार्य समझाते हैं तो समझनेयोग्य है, उसे समझाते हैं न? समझनेयोग्य है, उसे समझाते हैं या लकड़ी को समझाते हैं? राग को समझाते हैं?

मुमुक्षु : पहली कक्षा के विद्यार्थी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली कक्षा नहीं, यह आत्मा की कक्षा है। पहली-फहली कक्षा नहीं। यह आत्मा की कक्षा है।

मुमुक्षु : ठीक है, परन्तु पहली कक्षा के विद्यार्थी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली कक्षा के विद्यार्थी को यह जानना पड़ेगा। यह जाने बिना सब जाने, वह तो धूल-धाणी है। यह तो जघन्य पढ़नेवाले (को) साधारण उसकी भाषा में समझाते हैं। समझे न? जघन्य उसकी योग्यता, किन्तु यह चीज़ तो दूसरी है। समझ में आया? धर्मी होना है, धर्मी नाम धराना है तो धर्म कैसे होता है, उसकी खबर नहीं और धर्मी कहाँ से आ गया? समझ में आया? हम धर्मी हैं, हम धर्म करते हैं परन्तु धर्म करते हैं तो तुझे धर्म कहाँ से हुआ, खबर है? तेरी दृष्टि कहाँ थी, धर्म हुआ? यह कुछ पता नहीं (और मानते हैं) हम तो धर्म करते हैं।

मुमुक्षु : गुरु की कृपा....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। वहाँ गुरु की कृपा काम नहीं आती। आहाहा! भगवान की कृपा काम नहीं आती। देखो! शास्त्र में तो ऐसा आता है-भगवान की वाणी से ज्ञान होता है और ज्ञान से आत्मा को मुक्ति होती है तो सर्वज्ञ भगवान की कृपा से मुक्ति होती है - ऐसा शास्त्र में आता है। ऐ ई, आता है या नहीं? नियमसार में लिखा है। नियमसार में है न? पहले आया न पहले? शुरुआत में, कहाँ कितनी गाथा? आठवीं न? आठवीं में है? गाथा नहीं, श्लोक, सातवीं गाथा के पहले छठवीं (गाथा के) कलश पर विद्यानन्दस्वामी (के कलश में कहा है)। इष्टफल जो मुक्ति, उसका उपाय सुबोध है। मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है। सुबोध, सुशास्त्र से होता है... नवरंगभाई! सुबोध सुशास्त्र से होता है... निमित्त से बात करना है न? सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है...

मुमुक्षु : आप्त आये....

पूज्य गुरुदेवश्री : आप्त, भगवान, सम्यग्दृष्टि केवली, मुनि आदि सबको आप्त कहने में आता है। समझ में आया? यह सब भावदीपिका में लिखा है। इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं। है?

मुमुक्षु : सबेरे इन्द्रिय कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इन्द्रिय कहा था। किन्तु यहाँ निमित्तपने का ज्ञान कराना है कि निमित्त कौन था? समझ में आया? मुक्ति, सुबोध होता है तो होती है; सुबोध, शास्त्र से होता है; शास्त्र, आप्तपुरुष की वाणी होती है, वह शास्त्र है। समझ में आया? उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है। मुक्ति, सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनेयोग्य है।

मुमुक्षु : लो, एकदम स्पष्ट बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम स्पष्ट। 'करुणा हम पावत है तुमकी यह बात रही सुगुरुगम की।' भगवान! मुझ पर आपकी करुणा हुई, उसका अर्थ कि आपके ज्ञान में इस समय मेरा धर्म प्रगट हुआ—ऐसा आपके ज्ञान में था, यह आपकी करुणा मुझ पर हुई—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यह जिनसेनस्वामी तो भगवान को करुणामय कहते हैं। हे प्रभु! मुझ पर आपकी करुणा है।

मुमुक्षु : करुणा, जीव का स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव है। वह अविकारी करुणा स्वभाव है। अविकारी करुणा स्वभाव। वह 1008 नाम में आया है। समझ में आया? करुणा, ओहो! इस समय में यह ज्ञान, उसका ख्याल-ज्ञान में परिणमन है कि इस जीव को इस समय में मोक्ष होगा, केवलज्ञान होगा, इस समय में होगा-ऐसा निमित्तसम्बन्ध देखकर, प्रभु! आपके ज्ञान में मेरी धर्म पर्याय इस समय में प्रगट होगी - ऐसा था, तो आपकी मुझ पर करुणा है। ऐई, चन्दुभाई! बात तो ऐसी है। गुरुकृपा का यह अर्थ है (कि) ऐसा निमित्तपना होता है। ऐसी बात है, परन्तु निमित्तपना कब कहते हैं कि जब उसको आत्मा का स्वानन्द हुआ, स्व-आश्रय हुआ तो उसको निमित्त कहने में आता है - ऐसी बात है। गजब बातें! क्योंकि किये हुए उपकार को साधु पुरुष भूलते नहीं हैं। सज्जन पुरुष, जिस धर्मात्मा से उपकार हुआ, उस उपकार को धर्मात्मा भूलते नहीं - ऐसा कहते हैं। उसकी स्वभाव स्थिति में ऐसा है। धर्मात्मा के प्रति केवली के प्रति ऐसा बहुमान आये बिना नहीं रहता - ऐसी वस्तु की मर्यादा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि शक्ति की व्यक्ति (होती है)। यहाँ तो जरा यह बात है, शक्ति की व्यक्ति। जो परमस्वभावभाव त्रिकाली कहा और भव्यत्व लक्षण पारिणामिक जो पारिणामिकभाव त्रिकाल, वह जो शक्ति का पिण्ड है, उसकी व्यक्ति धर्म की पर्याय है - ऐसा यहाँ कहने में आया है। गजब बात भाई! चिमनभाई! पन्ने तो हैं न, पन्ने तो हैं न? आज तो छठवाँ व्याख्यान है, इस गाथा के पाँच व्याख्यान तो हो गये हैं। **तब...** शक्ति की व्यक्ति होती है तब-जब भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शक्ति की व्यक्ति ऐसा होता है, तब क्या होता है? **तब यह जीव, सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य के,...** देखो! आहाहा! **तब यह जीव, सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य...** आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई! पहले आया था, इसमें तुम्हारा थोड़ा वह आया था, वह ज्ञान करने के लिये आया था। गजब काम भाई! जैनदर्शन की शैली (अद्भुत है)।

एक ओर कहते हैं सुनने से जो ज्ञान होता है... एक तो मानो विवाद-तकरार यह

कि सुनने से ज्ञान होता है तो वह बात झूठी। ज्ञान अपनी पर्याय से होता है - एक बात। वह अपनी पर्याय से जो ज्ञान हुआ, वह तो यथार्थ ज्ञान नहीं। निमित्त-उपादान का विवाद... समझ में आया? सुनने से ज्ञान होता है, इन्द्रिय है तो सुना, उससे ज्ञान हुआ, तो कहते हैं इन्द्रिय और सुनने से नहीं; तेरी पर्याय में तेरी योग्यता से यह सुनने का ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान भी यथार्थ नहीं है। समझ में आया? उसका लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली परमस्वभाव में दृष्टि हो और जो ज्ञान हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। नवरंगभाई! गजब काम इसमें!

कहते हैं, जब शक्ति की व्यक्तता प्रगट होनेवाली है, तब जीव क्या करता है? सहज शुद्ध पारिणामिकभावलक्षण, त्रिकाल स्वभावभाव कूटस्थ जो ध्रुवभाव... परिणमनेवाला नहीं वह भाव, पर्याय में नहीं आता ऐसा भाव, आहाहा! सहज स्वाभाविक शुद्ध पारिणामिकभाव अर्थात् स्वभावभाव, जिसमें कोई अपेक्षा ही नहीं - पर्याय की अपेक्षा नहीं। **निज-परमात्मद्रव्य...** अपना परमात्मस्वरूप, त्रिकाल वस्तु। **द्रव्य के, सम्यक्श्रद्धान...** देखो, ऐसे द्रव्य की-सम्यक् चिदानन्द प्रभु अभेद चैतन्यद्रव्य की सम्यक्श्रद्धा, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : तो नौ तत्त्व की श्रद्धा कहाँ गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ तत्त्व की श्रद्धा-अनुभव मिथ्यात्व में गयी। भेदरूप श्रद्धा-नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, वह मिथ्यात्व है, यह पहले कहा था। पहले बताया था? कलश-टीका में बताया था। यह कलश में बताया था पहले, देखो! वही पृष्ठ आया। ***'नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है'*** यह छठवाँ कलश है, अमृतचन्द्राचार्य का कलश है, उसमें छठा कलश है। जीव-अजीव, आस्रव-बन्ध, संवर-निर्जरा-मोक्ष, पुण्य-पाप के अनादि सम्बन्ध को छोड़कर... (भावार्थ ऐसा है) संसार अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमित हुआ है, वह तो विभावपरिणति है। इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : देव-गुरु की श्रद्धा भी रह गयी इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-गुरु की श्रद्धा वह विकल्प है और विकल्प में धर्म मानते हैं, वह मिथ्यात्व है। ऐई! मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : कड़क बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क लगता है ? मार्ग तो यह है। विपरीत माने तो कहीं सुलटा हो जायेगा ? समयसार कलश है, वह राजमलजी (कृत) टीका है न, राजमलजी (की) टीका है न ? यह गुजराती है, हिन्दी भी है। समझ में आया ? नौ तत्त्व की नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की नहीं... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग / विकल्प है और विकल्प को परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : मूलचन्दभाई कहते हैं, वैसा कड़क अवश्य लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब मूलचन्दभाई को बहुत (कड़क) लगे ऐसा नहीं। पहले नया लगता था। कहो समझ में आया ? मार्ग तो ऐसा भाई! दूसरे रास्ते चढ़ जाये, जाये पश्चिम में और पूरब, भावनगर (मिल जाए) ? ऐसा कभी होता है ? भावनगर जाना है और जाये ढसा (ढसड़ा) यहाँ ढसा है न, ढसा-ढसड़ा है, यहाँ से तेरह गाँव दूर है न, तेरह गाँव है। ढसड़ा राजकोट की ओर पश्चिम (दिशा में) है। भावनगर तो पूरब में है।

अपना भावनगर भगवान तो पूरब है, जिसमें सूर्य उगे, उस दिशा में है। समझ में आया ? शक्ति की व्यक्ति कहा न भाई! शुद्धपारिणामिक सहज लक्षण निज परमात्मद्रव्य की सम्यक्श्रद्धा। समझ में आया ? उसका सम्यग्ज्ञान, सम्यक् तीनों में ले लेना। उसका सम्यग्ज्ञान और उसका अनुचरणरूप चारित्र। ध्रुव ज्ञायक भगवान आत्मा नित्य, उसकी दृष्टि लगाकर जो श्रद्धा हुई और जो ज्ञान हुआ, उसमें लीनता हुई, वह दर्शन-ज्ञान और चारित्र, ये तीनों पर्याय हैं। पर्याय है; द्रव्य नहीं, गुण नहीं, विकार नहीं। समझ में आया ?

पर्याय से परिणमता है;... ऐसी भाषा ली है। ऐसी अवस्था से परिणमता है, परिणाम को द्रव्य से भिन्न रखा, तथापि पर्याय से परिणमता है। समझ में आया ? पर्याय से परिणमता है ऐसा आया। द्रव्य परिणमता है - ऐसा नहीं। परन्तु यह तो एक दृष्टान्त (है) परन्तु यहाँ तो सीधा द्रव्य लेना है न, दूसरी जगह लेते हैं-द्रव्य स्वयं परिणमता है। द्रव्यत्वगुण है। द्रव्यत्वगुण है न, द्रव्यत्व। द्रव्यत्वगुण है या नहीं ? (है) तो उसका अर्थ क्या ? जिस शक्ति के कारण द्रव्य द्रवता है, परिणमता है, यह बात तो ज्ञान की विशेषता में दो भाव की बात भेद से कहने में आयी। परन्तु अभेद चिदानन्द द्रव्य अकेला है, वह पर्याय

में परिणमता नहीं; इसलिए कहा **पर्याय से परिणमता** है। समझ में आया? द्रव्य की सम्यग्ज्ञान-ज्ञान, वह पर्याय / अवस्था में होता है। आहाहा! गजब बात भाई!

वह परिणमन... बस, अब देखो। वह पर्याय-जो अवस्था प्रगट हुई, जो त्रिकाल ज्ञायकभगवान शुद्ध ध्रुव की दृष्टि करने से, उसका ज्ञान करने से और उसमें लीन होने से जो पर्यायरूप भाव हुआ, वह पर्याय अर्थात् अवस्था हुई, वह अवस्था किस भाव से हुई? उस अवस्था में क्या भाव कहने में आता है? वह कहते हैं।

वह परिणमन आगमभाषा से 'औपशमिक',... उसे औपशमिकभाव कहते हैं। देखो, यह औपशमिकभाव भी शुद्धोपयोगरूप है। आगमभाषा में उपशमरूप है, अध्यात्मभाषा में यह शुद्ध उपयोगरूप है। उपशमभाव भी शुद्धोपयोगरूप है। यह लोग शोर मचाते हैं न कि शुभविकल्प, शुभविकल्प शुभराग छठवें गुणस्थान तक शुभराग है; शुद्ध उपयोग है - ऐसा नहीं। यहाँ क्या कहा देखो? उपशमभाव, यह आगमभाषा से कहा और अध्यात्मभाषा में उसे शुद्ध आत्मा अभिमुख परिणाम कहा। शुद्ध भगवान आत्मा के सन्मुख का भाव, उसे अध्यात्म से शुद्ध आत्मा अभिमुख परिणाम कहो, या शुद्धोपयोग कहो। समझ में आया?

यह उपशमभाव चौथे से ग्यारहवें (गुणस्थान) तक (होता है), उपशम समकित होता है और उपशमचारित्र भी ग्यारहवें आदि में पूरा होता है। तो कहते हैं कि उपशमभाव में भी, शास्त्र भाषा से उसको उपशमभाव कहा। जिसकी प्रवृत्ति अभी अन्दर पड़ी है, नाश नहीं किया है, परन्तु निर्मलता प्रगट हुई है; जैसे पानी में मैल है, वह मैल (नीचे) बैठ गया है, निकाल नहीं गया है, बैठ गया है परन्तु पानी नितर गया है। नितर गया कहते हैं न ऊपर से? उसे उपशमभाव कहते हैं। अन्दर में प्रकृति पड़ी है, समझ में आया? सर्प का दृष्टान्त दिया था। सर्प निकला था हमारे पालेज में। नीचे बड़ा हडफा था। हडफा को (क्या कहते हैं)? लकड़ी की पेटी, बड़ी पेटी थी नीचे सर्प-बड़ा सर्प, करना क्या? बाँस पहुँच नहीं सकता, मनुष्य छू नहीं सकता, जा नहीं सकता। फिर किसी ने कहा इस पर पानी छिड़को, ठण्डा पानी, इसलिए हिल नहीं सकेगा, निकल नहीं सकेगा। फुँफकार नहीं सकेगा, फिर थोड़ा पानी छिड़का, लकड़ी की पेटी को थोड़ा हिलाकर बाहर निकाला, क्योंकि सर्प हिल नहीं सकता, पानी छिड़का तो फिर पकड़ा।

इसी प्रकार प्रकृति पर पहले पानी छिड़का-उपशम पुरुषार्थ से। पानी छिड़ककर प्रकृति का अनुदय कर दिया। अनुदय होने की योग्यता तो उसकी थी, हों!

मुमुक्षु : पानी से नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, प्रकृति... वह तो निमित्त से कथन है न? नहीं तो अपना पुरुषार्थ अपने में रहा और कर्म की प्रकृति का अनुदय हुआ, वह उसके कारण से हुआ। समझ में आया?

यह उपशमभाव-मोक्षमार्ग की पर्याय को उपशमभाव भी कहते हैं, क्षयोपशमभाव भी कहते हैं। क्षयोपशम चौथे से बारह तक होता है। समझ में आया? ज्ञान का, दर्शन-उपयोग का क्षयोपशम समकित चौथे से सातवें तक होता है और क्षायिक चौथे से सिद्ध तक (होता है) समकित का, ज्ञान-दर्शन का तेरहवें तक क्षायिकज्ञान, परन्तु जहाँ-जहाँ जो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक वह मोक्षमार्ग की जो पर्याय है... यहाँ भावत्रय की-पर्याय की बात करना है, हों! '**क्षायिक**' - **ऐसे भावत्रय कहा जाता है,...** भगवान आत्मा अपना ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और अनुचरण करने से जो पर्याय व्यक्तरूप प्रगट हुई, उसे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक शास्त्रभाषा से-आगम कथन से ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह गाथा तो अन्दर में पूरा मक्खन करके डाला है। **और अध्यात्मभाषा से...** देखो, स्वसन्मुख के झुकाववाली कथनशैली में... अध्यात्मस्थिति '**शुद्धात्माभिमुख**'... देखो अब, इस उपशमभाव में भी शुद्धात्माभिमुख, क्षयोपशम में भी शुद्धात्माभिमुख, क्षायिक में भी शुद्धात्माभिमुख (कहा जाता है)। समझ में आया?

शुद्ध भगवान के सन्मुख परिणाम हुआ, उसे आगमभाषा में उपशम, क्षयोपशम कहा; अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख (कहा)। जो विमुख था - शुद्ध आत्मा से विमुख था, और पर्याय तथा राग से सन्मुख था, वह दृष्टि छूटकर '**शुद्धात्माभिमुख परिणाम**',... (हुआ)। लो, परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, दशा कहो, हालत कहो-एक बोल। '**शुद्धोपयोग**'... दूसरा बोल। लो आया, तीन भाव में-तीनों में शुद्धोपयोग लिया है। ऐसा नहीं कहा कि क्षायिकभाव हो तो शुद्धोपयोग होता है। उपशमभाव में भी शुद्धोपयोग होता है - ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान से वह बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु लोगों को सत्य देखना हो तो पता पड़े न?

मुमुक्षु : चौथे से शुद्धोपयोग नहीं लेना, शुद्धोपयोग सातवें से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे का नहीं लेना, यह तो उन्होंने विपरीत लिखा है। यह क्या कहते हैं-उपशम, क्षायिक... उसमें लिखा है अजमेरवाले में-ऐसे दिखता तो ऐसा है, तीन भाव में चौथे से शुद्धोपयोग होता है-ऐसी टीकाकार की ध्वनि तो ऐसी है परन्तु अपने को उसमें से ऐसा अर्थ नहीं लेना, (अजमेर की प्रति में ऐसा लिखा है)। समझ में आया? है या नहीं, कहाँ है पृष्ठ? ३४१, देखो! तीन भाव आये न? तीन भाव आये, उसको अध्यात्मभाषा से शुद्धोपयोग कहा, तीनों भावों को—उपशम हो, क्षयोपशम हो, या क्षायिक हो। अब यहाँ आचार्य तो ऐसा कहते हैं कि *'तीनों भाव में आत्मा की अपेक्षा से शुद्धोपयोग कहने में आता है। तो यहाँ कहते हैं कि अध्यात्मभाषा में वही शुद्ध आत्मा के अभिमुख परिणामस्वरूप शुद्धोपयोग नाम पाता है। यह टीकाकार के उल्लेख से चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग हो जाना सिद्ध होता है। क्योंकि वहाँ दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम, उपशम हो जाता है; तो फिर क्या चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग मान लेना चाहिए?'* यह विवाद उठा है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु आचार्य ने कहा, फिर उसमें क्या बाधा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य ने कहा तो है परन्तु जहाँ वीतरागी समकित हो, वहाँ शुद्धोपयोग लेना, इसमें (ऐसा अजमेर से प्रकाशित प्रति के टीकाकार कहना चाहते हैं।)

मुमुक्षु : परन्तु आचार्य ने लिया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? ओहोहो! वस्तु सम्यक् चीज़ क्या है, वह शुद्धोपयोग में ही प्राप्त होता है। शुभ उपयोग विकल्प वहाँ है ही नहीं। समझ में आया? फिर (वे) ऐसा कहते हैं ऊपर कहा और ऐसा कहा है, ऐसा।

मुमुक्षु : अमुक जगह ऐसा कहा है और सर्वत्र विपरीत अर्थ, फिर दोनों उतारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों—दर्शनमोह और चारित्रमोह—दोनों के परिणामरहित हों तब उसे शुद्धोपयोग कहा जाता है (ऐसा वे कहते हैं)।

मुमुक्षु : भूल तो भूल ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गौणरूप से शुद्ध उपयोग।

वास्तविक चीज़ ऐसी है कि अपना निज व्यापार स्वसन्मुख हुआ तो उसका नाम शुद्धोपयोग है। समझ में आया? वहाँ शुभविकल्प की गन्ध नहीं है, अबुद्धिपूर्वक भले हो। समझ में आया? अबुद्धिपूर्वक अर्थात् ख्याल में न आवे, ऐसा राग हो परन्तु उपयोग वहाँ द्रव्य पर पड़ा है, उस उपयोग को शुद्धोपयोग कहते हैं। चौथे गुणस्थान से सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्धोपयोग से होता है; पश्चात् शुद्धोपयोग सदा नहीं रहता, कभी-कभी शुद्धोपयोग आ जाता है, पश्चात् शुद्धपरिणति रहती है। समझ में आया? फिर शुद्धपरिणति क्या और शुद्धोपयोग क्या? जो निर्मलता प्रगट हुई, उस परिणति की, उसमें दर्शन-ज्ञान और स्वरूप आचरण परिणति तो निरन्तर रहती है। समझ में आया? जब सम्यग्दृष्टि हुआ तो उसमें द्रव्य का शुद्धोपयोग जब हुआ, तब हुआ। तो वह शुद्धोपयोग बाद में हट जाता है, शुभविकल्प में-अशुभ में उपयोग आ जाता है परन्तु वह शुद्धपरिणति जो दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण की है, वह नहीं जाती; वह शुद्धपरिणति संवर और निर्जरा का कारण है। समझ में आया?

चाहे तो वह शुद्धोपयोगवाला, पहले सम्यक् हुआ और पश्चात् युद्ध में खड़ा हो और ९६००० स्त्रियों के वृन्द में विषय का विकल्प आया हो.. समझ में आया? परन्तु उसकी परिणति विकल्प से भिन्न पड़ी है। पण्डितजी!

पण्डितजी : बात ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है। 'निश्चय में लीन और व्यवहार से मुक्त है'। लोगों को, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और उसका ध्येय क्या है? और उसमें कितना लाभ है?- इसकी खबर नहीं है। किंचित् बाह्य त्याग करे और ऐसा करे और वैसा करे और कहे... आहाहा! धूल भी नहीं। मिथ्यात्व के त्याग बिना (अन्य) त्याग कैसा? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं फिर ऊपर लेना नहीं। ऐसा कहते हैं दर्शन सम्बन्धी और चारित्र सम्बन्धी भूल तो भूल है भाई! सब भूल निकले ऐसा शुद्ध उपयोग है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों भूल है परन्तु एक भूल रही या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो थोड़ी-ऐसा टीका में लिया था, राजमल टीका में। दृष्टान्त

सर्प का दिया था, सर्प का दृष्टान्त दिया है, सर्प को कीलित किया है, कीलित किया है, चारित्रमोह को कील दिया, बन्द कर दिया। सम्यग्दर्शन हुआ तो चारित्रमोह कील दिया... कीले की तरह कील दिया ऐसा है। राजमलजी (कृत टीका) में है। चारित्रमोह को तो कील दिया है, बन्द कर दिया है। समझ में आया?

इस कारण से स्वभाव के अनुभव में-सम्यग्दर्शन में जीव को इस दृष्टि की अपेक्षा से तो राग अशुभ हो या शुभ हो, कील रखा है चारित्रदोष को। बन्धन है नहीं। अपने में आता नहीं, पर्याय अपने में आती नहीं, लाता नहीं। पीछे क्या आया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गाथा में है - बनारसीदास ने लिया है, बनारसीदास ने उसमें से लिया है। बनारसीदास ने, कहीं श्लोक में है।

कहते हैं **भावत्रय...** अपना-द्रव्यस्वभाव वस्तु की ओर दृष्टि, ज्ञान और शान्ति हुई, वह भावत्रय उसे कहते हैं। तो तीनों भाव में शुद्धोपयोग कहने में आता है। समझ में आया? यह तो अलिंगग्रहण का दृष्टान्त दिया था। '***अपने स्वभाव से ही जानने में आनेवाला ज्ञाता है***' अलिंगग्रहण में छठा बोल है-प्रत्यक्ष ज्ञाता है। 'अपने स्वभाव से जानने में आनेवाला (है); विकल्प से-व्यवहार से-फयवार से नहीं; अपने स्वभाव से जानने में आनेवाला - ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है।' उसमें क्या राग आदि आया? वह तो शुद्धोपयोग हुआ।

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है-परन्तु यहाँ नीचे की बात है। ऊपर की कहाँ बात है? द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है, द्रव्य का स्वभाव ही स्वयं अपने स्वभाव से जानने में आये - ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता (है)। पहले, चौथे से ऐसा है; और दसवें बोल में यह आया - सूर्य में कलंक नहीं.. अलिंगग्रहण (के बोल में आया)। सूर्य में कलंक नहीं वैसे भगवान आत्मा में राग का कलंक नहीं है, वह तो शुद्धोपयोगस्वभावी है। वस्तु शुद्ध उपयोगस्वभावी है, तो जिसको आत्मा प्राप्त होता है, वह शुद्धोपयोग में ही प्राप्त होता है क्योंकि शुद्धोपयोगस्वभावी ही आत्मा है। आहाहा! बात ऐसी स्पष्ट है परन्तु अब वाद-विवाद... शास्त्र की भाषा से, अपने निज की खबर नहीं और अपनी कल्पना से शास्त्र के अर्थ ऐसे के ऐसे विपरीत करते हैं।

यहाँ कहते हैं उसे '**शुद्धात्माभिमुख परिणाम**',... कहते हैं। इत्यादि इत्यादि - द्रव्यसंग्रह में २०४ पृष्ठ पर इसके ६५ नाम हैं। इस शुद्धात्माभिमुख परिणाम के (६५) नाम हैं। जैसे भगवान के १००८ नाम से भगवान की स्तुति की है न? वैसे शुद्ध आत्मा (अभिमुख) परिणाम के ६५-६६ नाम हैं और अनुभवप्रकाश में ४७ नाम हैं। ऐसे, ११० नाम हैं।

मुमुक्षु : परमहंसवाला रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमहंस आयेगा, अभी तो समय हो गया न, भाई! समझ में आया? अभी इसके नाम आयेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्रव्यदृष्टि को क्या मान्य है?

द्रव्यदृष्टि कहती है कि 'मैं मात्र आत्मा को ही स्वीकार करती हूँ'— आत्मा में पर का सम्बन्ध नहीं हो सकता; अतः पर सम्बन्धी भावों को यह दृष्टि स्वीकार नहीं करती है। अरे! चौदह गुणस्थान के भेदों को भी, पर संयोग से होने के कारण यह दृष्टि स्वीकार नहीं करती है; इस दृष्टि को तो मात्र आत्मस्वभाव ही मान्य है।

जो जिसका स्वभाव है, उसमें उसका कभी भी किञ्चित् भी अभाव नहीं हो सकता और जो किञ्चित् भी अभाव या हीनाधिक हो सके, वह वस्तु का स्वभाव नहीं है। अर्थात् जो त्रिकाल एकरूप रहे, वही वस्तु का स्वभाव है। यह दृष्टि इसी स्वभाव को स्वीकार करती है। द्रव्यदृष्टि कहती है कि मैं जीव को मानती हूँ, वह जीव कितना?... सम्बन्ध रहित रहे, उतना। अर्थात् सर्व पर पदार्थों का सम्बन्ध निकाल डालने पर जो अकेला स्वतत्त्व रहे, उसे ही मैं स्वीकार करती हूँ। मेरे लक्ष्य रूप चैतन्य भगवान की पहचान परनिमित्त की अपेक्षा से कराऊँ तो चैतन्यस्वभाव की हीनता प्रदर्शित होती है। मेरे चैतन्य स्वभाव को पर की अपेक्षा नहीं है। एक समय में परिपूर्ण द्रव्य ही मुझे मान्य है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी